Nāsadīyam
A Multi-Disciplinary National Research Journal (Annual)
Peer Reviewed/Refereed
Available online at: https://nasadiyam.dmmkkr.ac.in/
ISSN: 3108-0200 (Online)
Volume 4, Issue 1 (Jan – Dec), 2025, Pp 55-58

उपनिषदों में आश्रम व्यवस्था

डॉ॰ रूकमेश
सहायक प्रवक्त्री (इतिहास विभाग)
दयानन्द महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत
ई-मेलः tinymanjeet@gmail.com
दूरभाषः 7988021219

संक्षेपिका

उपनिषदों को भारतीय चिन्तन, जीवन द्रर्शन, सभ्यता और संस्कृति का मूल माना जाता है यह एकमाग दर्शनग्रन्थ ही नहीं है बल्कि इनमें भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों, जीवनमूल्यों तथा नैतिक मानदण्डों के दर्शन होते हैं। भारतीय भक्ति पद्धति का मूल भी विवेचकों में वैदिक संहिताओं और आरग्यकों के पश्चात् उपनिषदों को ही माना है। उपनिषदों में जिस प्रकार वर्णव्यवस्था को चार भागों में (ब्रहमचर्य, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में बांटा गया है उसी प्रकार मनुष्य के जीवन को भी चार आश्रमों (ब्रहमचर्य, ग्रहस्य, वानप्रस्थ और सन्यास) में विभाजित किया है। चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धी से आश्रम व्यवस्था को साधक माना जाता है। उपनिषद् सिखाते है कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य शरीर और मन की सीमाओं से परे, ब्रह्मा के रूप में अपने वास्तविक स्वरूप को महसूस करना है।

कुंजी शब्द- उपनिषद्, वर्णव्यवस्था, ब्राहम्ण, भक्ति, आश्रम, आरव्यक, ग्रंथ, सांसारिक सुख, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र

शोधपत्र

उपनिषद् एकमात्र दर्शनग्रन्थ ही नहीं, इनमें भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों, जीवनमूल्यों तथा नैतिक मानदण्डों के भी दर्शन होते हैं। तत्कालीन सामाजिक सङ्गठन ब्राह्मणादि का स्थान, आश्रम व्यवस्था तथा नारी की सन्तोषजनक दशा के वर्णन के साथ यज्ञ की विश्व की प्रक्रिया के रूप में एवं श्रेष्ठ कर्म के रूप में, व्याख्या यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, यज्ञो वै ब्रह्म, यज्ञो वै विष्णुः भी मिलती है। कोरे वेदपाठ, जन्मगत वर्णव्यवस्था, हिंसात्मक यज्ञवाद तथा आडम्बरशील जीवन के प्रति उपनिषत् काल में मोह न था और न ही तत्कालीन ऋषि पलायनवादी थे। इस प्रकार के क्रान्तिकारी वातावरण की सूचना भी इन ग्रन्थों में मिलती है।

अतः उपनिषदों को भारतीय चिन्तन, जीवन, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का मूल स्वीकार किया जाता है। भारतीय भक्ति पद्धति का मूल भी विवेचकों ने, वैदिक संहिताओं और आरण्यकों के पश्चात्, उपनिषदों को ही माना है। वस्तुतः उपनिषदुत्तरकाल के जो भिन्न-भिन्न विचार-प्रवाह है, उनका उद्गम उपनिषदें ही है।

जिस प्रकार आश्रम को चार भागों में विभाजित किया गया है, वैसे ही वर्ण भी चार हैं। जबकि ये चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र[1] -मानव समाज की संपूर्ण संरचना के आध्यात्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और शारीरिक पहलुओं का गठन करते हैं, आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास पूरी तरह से एक और व्यवस्था का गठन करते हैं।

जब हम आश्रम धर्म के पहले चरण, अर्थात् ब्रह्मचर्य के बारे में सोचते हैं तो गुरु-शिष्य सम्बन्ध का विचार मन में आता है, जो हमें शारीरिक अनुशासन की आवश्यकता के बारे में बहुत कुछ बताता है। ब्रह्मचारी वह लड़का जो अभी युवावस्था में है -उसे उस सेवा के माध्यम से पूर्ण प्रकार का शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता है जो उससे

गुरु को प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है। इस अनुशासन के द्वारा, उसे अपने जीवन का दृष्टिकोण दिया जाता है, न कि केवल शरीर को अनुशासित करने का अवसर दिया जाता है। वह जानता है कि उसे दूसरों के सामने और अन्य चीजों के सम्बन्ध में कैसा व्यवहार करना है और शुरुआत में ही उस योगदान के लिए एक प्रकार की जमीन तैयार हो जाती है जो उसे बाद में वयस्क बनने, मानव समाज की एक इकाई बनने पर देना होता है।

चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में आश्रम व्यवस्था साधक है। छान्दोग्य में तीन आश्रमधर्मों का उल्लेख हुआ है।[2] प्रस्तुत प्रकरण में धर्म के तीन स्कन्धों का कथन है जिसमें यज्ञ, अध्ययन और दान का प्रथम, तप को द्वितीय तथा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए आचार्यकुल में वास की तृतीय स्कन्ध कहा है।[3]

ब्रह्मचर्य आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम का अर्थ है श्रेष्ठ आचरण करना ब्रह्मचर्य आश्रम मानव के सफल जीवन के लिए आवश्यक है। इस आश्रम में मनुष्य अध्ययन कार्य करता है, जिसका उद्देश्य भौतिक और आध्यात्मिक विकास करके नैतिक उन्नति करना है। जो मनुष्य अपने इन्द्रियों को वश में करें जो सर्वज्ञाता हो उसका गुरु ब्रह्म हो ब्रह्मचारी कहलाता है।[4] ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यावहारिक ज्ञान का भी अपना महत्त्व बताया गया है। विधि ग्रन्थो की व्यवस्था के अनुसार पुरुषों के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि 25 और स्त्रियों के लिए 16 वर्ष निश्चित की है।

ब्रह्मचर्य आश्रम का उद्देश्य ही ज्ञानप्राप्ति द्वारा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना था, जिसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालना करना विद्यार्थी के लिए परमावश्यक था। विद्यार्थी लगभग 12 वर्ष की अवस्था अवस्था में गुरुकुलों में प्रवेश करते थे।[5] जहाँ गुरु उनका उपनयन संस्कार कर[6] उन्हें शिष्य रूप में ग्रहण करते थे।

छान्दोग्य उपनिषद् के अध्ययन से विदित होता है कि कम से कम 12 वर्ष तक वह शिष्य आचार्यकुल में निवास करता था। तथा गुरु के आदेशानुसार गौ आदि पशुओं की सेवा[7] तथा अग्निपरिचर्या[8] आदि में संलग्न रहता हुआ गुरु से शिक्षा प्राप्त करता था। जब गुरु समझता था कि इसकी शिक्षा पूरी हो गयी और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य हो गया है तो वह उनका समावर्तन संस्कार कर देता था।[9]

गृहस्थ आश्रम

आश्रम धर्म की दूसरी अवस्था का नाम गृहस्थ है, जिसे मनु ने समुद्र की संज्ञा दी है, जैसे सब नदियाँ समुद्र में जाकर शरण लेती है, उसी प्रकार सभी आश्रमों में रहने वाले लोग गृहस्थ के यहां आश्रय पाते हैं। इसलिए यहाँ इहलोक और परलोक के सुख प्राप्त करने के इच्छुक लोगों को चाहिए कि वे संसार रुपी सागर गृहस्थाश्रम का भली भांति पालन करें। गृहस्थ जीवन का महत्त्व आज भी मानव जीवन में बना है।

मनु ने गृहस्थाश्रम को सर्वोत्तम कहा है क्योंकि यह सभी आश्रमों का आधार है।[10] यर्जुवेद का सन्देश है - हे गृहस्थों! तुम लोग डरो मत, मत कम्पायमान होओ, अन्न बल और विद्या को धारण करके गृहस्थाश्रम के सभी कर्त्तव्यों को पूर्ण करो।[11] भौतिक जीवन का शुभारम्भ इसी आश्रम में होता था।[12] इस अवस्था में अर्थ का उपार्जन करते हुए धार्मिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया जाता था। गृहस्थाश्रम को आश्रमों में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ बताया गया है।[13]

वानप्रस्थ आश्रम

एक गृहस्थ जब समस्त सांसारिक सुख भोगो से परितृप्त तथा उत्तरदायित्वों को अपने विवाहित पुत्रों को सौंपकर जब ईश्वराधना के लिए एकान्तवास करता है तो उक्त अवस्था को वानप्रस्थ कहते हैं। इस स्थिति में मनुष्य संपूर्ण सांसारिक कामनाओं एवं इच्छाओं से विरक्त होकर जीवन के शेष भाग को धर्माजन एवं ईश्वराधना में लगाकर दिव्यानुभूति प्राप्त करता है। इस दिव्यानुभूति के कारण वह आत्मानंन्द एवं निःश्रेयस की उन्नातावस्था को अग्रसर होता है।

उपनिषदों में अरण्यवास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आत्मज्ञान का क्रम गृहस्थ जीवन में तो होता ही था किन्तु ज्यों ज्यों मनन और चिन्तन का प्राबल्य प्रतिष्ठित होने लगा त्यों-त्यों अरण्यों का महत्त्व प्रकाश में आया। अरण्यवास समाज के लिए नितान्त आवश्यक नहीं था। किन्तु अरण्यवास के लिए समाज अवश्य उन्नमुख हो चुका था। वानप्रस्थ का तत्कालीन अभिधान अरण्य ही था। आरण्यक ग्रन्थों की रचना भी उन्हीं वानप्रस्थियों ने की है।[14] इस अवस्था में भिक्षाचरण किया जाता था।[15] वन में श्रद्धा और तप की उपासना की जाती थी।[16] तप धर्म का दूसरा स्कन्ध है।[17] जिसका सम्बन्ध इसी आश्रम में प्रतीत होता है। मनु ने लिखा है-''ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थाश्रम में ठहरकर नियतात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीत के वन में बसे।''[18] बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है-''गृहस्थाश्रम समाप्त करके वानप्रस्थी वन जाए।''[19]

सन्यास आश्रम

संन्यास शब्द का प्रयोग मुण्डकोपनिषद् में हुआ है। यह जीवन की अन्तिम अवस्था है।[20] गीता में विद्वान लोगों ने काम्य कर्मों केत्याग को संन्यास कहा है।

काम्यानां कर्मणा न्यास कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।[21]

स्त्री, पुत्र, धन आदि प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति एवं रोग व्याधि कष्ट संकट आदि विपदाओं की निवृत्ति के लिए सम्पन्न किए जाने वाले कर्म जैसे यज्ञ, दान, तप और उपासना को काम्य कर्म कहा गया है। सन्यासी के लिए इनका परित्याग करना आवश्यक है।

कौषीतकि उपनिषद् का कथन है कि पुत्र को उत्तराधिकार देने के अनन्तर या तो पुत्राधीन रहे अथवा परिव्रजन करे। ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से सर्वथा हटकर भिक्षाचर्या से जीवन यापन करते थे।[22] उक्त आश्रमत्रय के अनन्तर ही ऐषणा राहित्य की अवस्था आती है। जब मन में वैराग्य की चरमसीमा हो तभी संन्यासी बन जाना चाहिए। वैराग्य की अधिकता में क्रम भंग हो सकता है।[23]

निष्कर्ष

उपनिषद् हिन्दू दर्शन में पवित्र ग्रन्थों का एक संग्रह है। वास्तविकता, आत्म-साक्षात्कार और मुक्ति की प्रकृति में गहन अर्न्तदृष्टि के साथ समाप्त होता है। वे सभी अस्तित्व की एकता पर जोर देते हैं, यह घोषणा करते हुए कि सच्चा स्व (आत्मान) परम वास्तविकता (ब्रह्म) के समान है। वे सांसारिक इच्छाओं और आसक्तियों के त्याग की वकालत करते है। जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति (मोक्ष) के मार्ग के रूप में ज्ञान, ध्यान और आत्म-साक्षात्कार

की खोज करते हैं। उपनिषद् सिखाते हैं कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य शरीर और मन की सीमाओं से परे, ब्रह्म के रूप में अपने वास्तविक स्वरूप को महसूस करना और परमात्मा के साथ शाश्वत आनंद और एकता प्राप्त करना है।

संदर्भ सूची

1. बलवीर आचार्य, ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का सांस्कृतिक अध्ययन, विधानिधि प्रकाशन, 2019, पृ. 49
2. प्रो. मनुदेव बन्धु, छान्दोग्योपनिषद एक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, आस्था प्रकाशन, 2015, पृ. 229
3. छान्दोग्योपनिषद- 2/23/1
4. गीता 6/14
5. छान्दोग्योपनिषद् 6/1/2
6. छान्दोग्योपनिषद् 4/4/5
7. मनुदेव बन्धु, छान्दोग्योपनिषद्, पृ. 229
8. मनुदेव उपरोक्त, पृ. 229
9. मनुदेव बन्धु उपरोक्त पृ. 229
10. मनुस्मृति 6/10
11. यर्जुवेद 3/41
12. र्ततिरीय उपनिषद् - 1/1/1/1
13. मनुस्मृति 6/13
14. मनुदेव बन्धु, बृहदारण्यकोपनिषद् एक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, आस्था प्रकाशन, 2014, पृ. 180
15. मुण्डक उप॰ 1/2/11
16. छां॰ उप॰ 5/10/1
17. छां॰ उप॰ 2/13/1
18. एवं गृहस्थाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
    वने वसेत्सु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।। मनु॰
19. गृही भूत्वा वनी भवेत्। बृह. उप.
20. मुण्डक उप. 3/2/6
21. वही 14/2
22. मनुदेव बन्धु, बृहदारण्यकोपनिषद् उपरोक्त, पृ. 180-181
23. मनुदेवबन्धु, उपरोक्त, पृ. 181